रोशनी की तलाश में

" उत्तर प्रदेश सरकार, शिक्षा विभाग
(पुस्तकालय शाखा) से अनुदान स्वरूप प्राप्त "

विष्णुदत्त जोशी

राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर

प्रकाशक :
राजस्थानी ग्रन्थागार
सोजती गेट के अन्दर
जोधपुर

© विष्णुदत्त जोशी

मूल्य : **पैंतीस रुपये**

आवरण : एस. पी. शर्मा

मुद्रक :
प्रिंटिंग हाउस
मेड़ती गेट के बाहर
जोधपुर

छोटे भाई

स्व. ओमदत्त जोशी

को

सस्नेह

पहला पाठक होने का सुख

राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय का छात्र केशव, जैवी अनिवार्यताओं से निरी अजूबा दिनचर्या को कड़वी विवशता के साथ जीता हुआ थक जाने की हद पर आकर एक और पर आखिरी प्रतिक्रिया व्यक्त कर अपना न होना कर लेता है. एक आदमी का इस तरह न हो जाना उसके अपने समाज और व्यवस्था पर कोई प्रश्न चिन्ह नहीं बनता. बनता है तो केवल अखबार की दो इंच जमीन पर गैर जरूरी समाचार.

यह बात अलग है कि अपना होना बनाए रखने की जी-तोड़ कोशिशों में सड़क से अखबार के चप्पे-चप्पे को खुर्दबीनी आंख से देखने वाला केशव की ही जमात का कोई जवान केशव के यूं न हो जाने को "राष्ट्र के नाम एक मौत" का शीर्षक दे दे.

पर यह शीर्षक रचनेवाला भी यह जानता है कि "अखबार और आदमी" के रिश्ते की सांसें ही कितनी-सी होती है, और वह चिंतित हो जाता है. केवल जीने की चिन्ता करता है, वह पुरानी रद्दी का पुलिंदा होकर मरना नहीं चाहता. अगर वह अखबार हो ही गया है तो फाड़ दिए जाने की इच्छा रखता है, वह केवल बिखरते रहना नहीं चाहता.

इस तरह समझने की चेष्टा की इस पाठक ने राजस्थान की नव्यतम

पीढ़ी के हस्ताक्षर विष्णुदत्त जोशी की कविताओं को "जाल बिछे रास्तों के बीच" और "तुम्हारे और मेरे बीच" शीर्षकों से दो खंडीय काव्य-संग्रह "रोशनी की तलाश में" मेरे सामने है.

पाण्डुलिपि का पाठक बनने का मेरे तई अर्थ रहा है कि पाठक और रचना के रूप में कविता के माध्यम से समझ का रिश्ता बने और यह रिश्ता संवाद के सहारे लम्बी दूरी तय करे.

मैं "रोशनी की तलाश में" की कविताओं का अच्छा पाठक सिद्ध हुआ कि नहीं यह तो पहले स्वयं रचनाकार ही बताएंगे और फिर दूसरे सुधि पाठक.

"जाल बीछे रास्तों के बीच" की कविताओं में मुख्य रूप से रचनाकार के बाहर को देखने के अनुभव उभरे हैं तो "तुम्हारे और मेरे बीच" में उनके अपने व्यक्ति के कड़वे-मीठे अनुभव. रचनाकार का बाहर यहां अनुपस्थित हो, ऐसा भी नहीं. दोनों ही शीर्षकों के अन्तर्गत बांटी गई कविताएं उनके बाहर और भीतर को दिखाती हैं, यूं कहा जाए कहीं-कहीं पाठक को ठहरने के लिए विवश कर देती हैं—

"पसीने से तर शरीर/थरथराती अंधेरी गुफा में/झपट्टे हर तरफ/ भागने की आजादी और अन्त कहीं नहीं"···· दिया गया दुःस्वप्न है यह. रचनाकार का व्यक्ति इसका अन्त चाहते हुए भटक रहा है. वह तो जीवन चाहता है, ऐसा सपना नहीं. पर लम्बी-पुरानी विरासत के साथ जमी हुई जड़ों वाली व्यवस्था अपने होने के लिए, जीवन के साथ ऐसे सपनों को नत्थी करना पहली जरूरत जो मानती है.

युद्ध भी हिस्सा ही है इस सपने का. इस तरह के कई-कई जीवित सवालों के साथ जोशी की रचना-यात्रा चलती है. वे बच्चों को देखते हैं, शहर देखते हैं, शहर में दोस्त है, अखबार हैं, अखबार में केशव के न हो जाने के समाचार हैं. भागती हुई सड़कें हैं. सड़कों पर थक-थक कर चलता आदमी है. वे लोग पुकारते भी हैं पर किसे ? रचनाकार खुद से ही पूछ लेता है—मुझे क्यों पुकारा ?

इस तरह के सवालों से रूबरू होता, आंधियों और अन्धेरों को जीता हुआ आदमी जानता है कि फिर भी इसे आदमकद पहाड़ की तरह जीना है, 'पराजित बेल' की तरह नहीं. यह केवल अपने लिए नहीं

कहता, इसलिए नहीं कहता कि कोई कोरी निपट इकाई है. वह तो पसरे हुए विराट का हिस्सा है, इसलिए चलने के लिए—

"उठो, चलो/मिलाओ हाथ, बढ़ाओ पांव/
सोचने का अब/समय नहीं है."

कभी-कभी लगता है, सच सोचने का समय नहीं रह गया है. जो-जो सामने है उसके पूरे भीतर में से गुजरते हुए चलते जाना है. अनवरत यूं चलते चलते भले लगे कि यह तो "वही क्रम....वही क्रम... वही क्रम है...."

इसी क्रम में तो उसे सलीब पर सोना है, उसके एक दिन को मरना है. देह और सोच के एक-एक जोड़ को दुखना है, **दुखते रहना है**–यह सब इसलिए कि उसे उस जैसे अनापे बड़े को एक दु:स्वप्न जीना पड़ रहा है. जीने के इसी क्रम में ही कोंधती है एक रोशनी—जीने की एषणा और सपनों का एक संसार रच लेते हैं—

"धीरे धीरे घोंसले में/उड़ानों का सिमटना/
ताना-बाना बुनना/फैलाना मन को/
चोंच-चोंच संसार उंडेलना ....."

इस तरह की पंक्तियां पढ़ते हुए यह पाठक यही सोच पाया कि थकन, भटकन और दुखते हुए सफर के बावजूद जोशी का रचनाकर्मी मन लगातार "चोंच-चोंच संसार उंडेलते" रहने के लिए 'अन्त' नहीं चाहते, वे केवल आरम्भ चाहते हैं, वे चलते रहने वाला रास्ता चाहते हैं, ठहरा देने वाली मंजिल उनके सपने में नहीं, उनके रचनात्मक स्वभाव में नहीं.

कविताओं में जगह-जगह उभरे बिम्ब प्रमाणित करते हैं कि वे रेत के समंदर में जीने वाले केवट हैं—राजस्थानी शब्दों ने कुल मिला कर कविताओं की भाषा को सहज बनाए रखा है. यह पाठक सोच और संवेदन से जुड़ने वाली पंक्तियों पर तो रुका ही है, कई-कई रचनाओं के अनगढ़पन पर भी ठहरा है. उस पर सोचने की चेष्टा में पाया है कि रचना के साथ यात्रा करने के क्रम में अनगढपन आता ही है, आना ही चाहिए. यह अनगढ़पन ही रचनाकार के भीतर की सम्भावनाओं की झलक देता है. और इस पाठक की दृष्टि में शब्द की कारीगरी करने से अच्छा है शब्द को अनगढ़ रूप में रचा-गढ़ा जाए. अपने ही शब्द के अनगढ़ रूपों को

देखने पर ही रचनाकार यह जान पाता है कि उसने कहां-कहां कैसे-कैसे ठहर कर शब्द-रचना की यात्रा की और इस तरह वह बहुत धीरे-धीरे शब्द को पूरे भीतर और बाहर को अपनी क्षमता भर देख-समझ पाया.

जोशी में और-और रचने की सम्भावनाएं हैं. वे मूर्त रूप तो तब लेंगीं, जब वे रचने की अपनी बळत को बनाए रखेंगे. बाहर को और बाहर के भीतर को देखने वाली आंख खुली रखेंगे. मुझे विश्वास करना ही चाहिए कि श्री जोशी 'बळत' और 'आंख' के प्रति सजग रहेंगे. वे सजग हैं—इन कविताओं में संकेत है.

मैं उनके लिए ऊर्ध्वगामी रचना-यात्रा की कामना करता हूँ. अपनी रचनाओं का पहला पाठक होने का अवसर उन्होंने मुझे दिया, मेरे प्रति उनके इस अपनापे को मैं सुख मानता हूँ.

हरीश भादानी

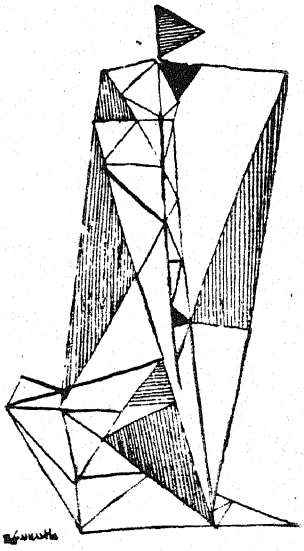

जाल बिछे रास्तों के बीच

आग की बस्ती

फिर फिर लौट आना
चीखों के जंगल में
बांस की टकराहट से लगी आग में
तपना, झुलसना.
मरहम की नदी
उस पार थी
अब उसमें आग बहती है.
अतृप्ति के तूफान ने
डस लिया सबको
चारों तरफ आग
बौखलाए भागते
परिधि में.
नानी कहती थी
जंगल पार एक बस्ती है
लोग वहाँ
घर बना, खेती कर, मिल बांट खाते है.
बचपन से आग को ही देखा
वृत्ताकार भय में जिए
परिधि तोड़ने का कभी सोचा
झुलसने का डर हावी हुआ.
बच्चों को सुनाता
नानी की बातें
साहस भरता
जा सकें उस पार
ना हो बस्ती, बसा लें.

युद्ध के लिए

मेरे बच्चे !
नंगे सिर मत निकलो
लाठी, पत्थर, गोलियों का डर है
तुम बेकसूर सही
बाहर कौन सुनेगा ?
एक एक कदम
चलना सीखा था जब तुमने
सपना देखा था
भयमुक्त रखने का
पर जीवन ही आतंक बन जाए
तो कैसे बचोगे
असहाय पिता की यही चिन्ता है.
मैं तुम्हें रोकूंगा नहीं
बस चाहता हूँ, जान लो
चारों तरफ युद्ध है
चक्रव्यूह तोड़ना होगा
तभी ला सकोगे
जीवन बाहर.

अन्त की तलाश में
भटकता एक दुःस्वप्न

चारों तरफ से
उठा तूफान
घाव पर घाव
रिसते जख्म, मरहम नहीं
लम्बी अन्धेरी गुफाएं, अंतहीन
एक टुकड़ा धूप भी नहीं
ठोकरें खाते पांव लहूलुहान
भरपूर चौड़ी आंखें भी बिम्बहीन
थकान से चूर चूर.
झपकी में खौफनाक स्वप्न
दैत्याकार जंगली जानवर
लपलपाती जीभ, लम्बे दांत
अपने पंजे कसने की कोशिश में.
बदहवास, अन्तहीन दौड़
थककर पंजों के हवाले होते
एक लम्बी डरी सी चीत्कार
पसीने से तर शरीर
थरथराता अन्धेरी गुफा में
झपट्टे हर तरफ
भागने की आजादी और अन्त कहीं नहीं
बाहर भीतर घुप्प अन्धेरा
रोशनी कहीं नहीं.

बच्चे

स्कूली पोशाकों में सजे बच्चे
मम्मी पापा की गोद में बच्चे
जिद करते और इतराकर दुलार पाते बच्चे
कार में डैडी के पास बैठे बच्चे
दुकानों पर ढेर से खिलौने खरीदते बच्चे
रंग बिरंगे नए नए परिधान पहने बच्चे
दौड़ते खेलते कूदते बच्चे
बच्चे, बच्चे, बच्चे.
बच्चे, मां-बाप की आंखों के तारे
बच्चे, प्यारे दुलारे
बच्चे, भविष्य देश का
बच्चे, कल के वैज्ञानिक, खिलाड़ी,
डॉक्टर, इजीनियर, उद्योगपति.
आते जाते
टेबलों पर हाथ फैलाए
नन्हे नन्हे
कभी एश-ट्रे से खेलते
पानी गिराते कभी
कुर्सियों पर उछलते
घर वालों का प्यार पाते.
ऐसे सभी बच्चों को
देखता एकटक
सोचता अपने बारे में
जूठे बर्तन साफ करता
दस साल का धनिया.

रोशनी की तलाश में

अन्धेरा फेंक शहर पर
सूरज भाग गया
लोग
रोशनी तलाशते.
जिनको आदत है
खिड़कियों के प्रकाश में जीने की
चुपकर बैठ जाते
सुबह की प्रतीक्षा में.
खिड़की तोड़ ला सके प्रकाश
सोचते सो जाते
अन्धेरे में आरक्षित
खिड़की की रात
सूरज उल्टे मुंह लाने की सोचते.
रात में सूरज नहीं आता
प्रकाश लाने
शीशे तोड़ने होंगे
या ऐसे ही
नपुंसक चांदनी में जीना होगा.

मेरे दोस्त

उठो !
सूरज की तरह
निश्चित दिशा गति से
कदम बढ़े ठोस.
फैल जाओ
आकाश जैसे, ओर न छोर
सबको भर लो अपने में.
छा जाओ
एटम विस्फोट के धुंए की तरह
चेतना के किटाणु से सबको छू लो.
चिलचिलाती धूप की तरह
चमको, कि आंखों में बस तुम्हीं रहो
ढीले ढाले जिस्मों, थके हारे जीवन में
जाग दो, उनींदी आंखों से घुसकर.
कहीं छुपा है विद्रोह
लिजलिजी व्यवस्था के खिलाफ
पीड़ित मन में बिखरा जोश
टटोलो, झाड़कर राख उड़ाओ
अंगारों को दो हवा
जीवन्त विचारों की.
उठो मेरे दोस्त
बहुत देर हो गई
जागना होगा अब
साकार करना होगा
सृजन के सपनों को.

सड़क

नीली, पीली, लाल, सफेद
इसके रंग अनेक
सुबह पुती लालिमा से
दिन में होती चकाचौंध
रात उतरते
होती काली, घुप्प अन्धेरी
नियोन बत्तियों से
पुता चेहरा, जगमगाता सफेद.
कुछ दिन पहले जमाल ने
चाकू मारा था रामू को
लाल हो गई
कुछ दिन खाकी रहकर
सुस्त रही पड़ी
ट्रक ने फिर कल
लाल चुनर पहना दी
साइकल वाले के खून की.
गाड़ियों की चिल्ल पौं
नारों और लाउडस्पीकरों के शोर में
जलसों और मार्चपास्ट में.
ठेलों के लुट जाने पर
रोडरोलर फिर जाने पर
बुढिया के कट जाने पर
बालक के खो जाने पर

रंग पसरता रहता इसका
अस्पताल, संसद, पागलखाना, श्मशान
कहीं भी जाना हो
यहां से गुजरिये.
कुत्ता, घोड़ा, गधा, आदमी
फर्क नहीं सब एक समान
सब लुटते हैं, सब पिटते हैं
खाते डंडे, आहें भरते
चलते रहते अपनी चाल
इधर हवेली, उधर दुकान
कौन सड़क पर देता ध्यान ?
इलेक्शन में वोट दिलाती
जीतने पर उद्घाटन कराती
फिर आपाधापी जेब भराती
एक हवेली और बनाती
कार के नीचे पिसती जाती
इस पर भी सब सहती जाती
मुंह नहीं खोलती
रंग बदलती, देखती, सुनती जाती.

पुकारते लोग

राह गुजरते लगता है
लोग मुझे बुलाते.
अनजान चेहरों में
परिचय के चिन्ह
साथ, आसपास गुजरते
उन आवाजों पर
सम्बोधन अपना लगता
मुड़कर देखता हूं.
मैले, फटे कपड़ों में
अधनंगे लोग
कहीं गिड़गिड़ाते, मार खाते
बैल बने, गोदाम भरते
भूखे बच्चों की खातिर.
पत्थर जोड़कर मकान बनाते
और फुटपाथ पर सो जाते
जन्म, ब्याह और मौत
सभी औसर यहीं, फुटपाथ पर.
पढ़ाई, मिठाई, त्यौहार, आजादी, चुनाव
सब अपरिचित नाम.
काम तिजोरियां भरते जीना
और खाली हाथ
जैसे रोज रात में मरना.
मुड़कर देख, आगे बढ़ता
अपने से पूछता
मुझे क्यों पुकारा ?

एक मौत राष्ट्र के नाम

(केशव के लिए)*

लटक गया
लो वह फांसी पर
जो रोज बहस करता था मुझसे
सड़ी राजनीति और बदबूदार शिक्षा पद्धति पर.
वह बेरोजगार था
चाय की दूकान पर बैठकर बहस करना
सड़कें नापते दफ्तरों में अर्जियां देना
रोजगार कार्यालय में कार्ड रिन्यू करवाना
वहां बोर्ड पर भविष्य देखना
उसकी दिनचर्या थी.
घर बैठ नहीं पाता था वह
एक बार कहा था उसने
"लगता है सभी रिश्ते
पैसों के खम्भों पर टिके
स्वार्थ की छाया में पलते हैं."
मां-बाप पाने की लालसा रखते थे
वह कहां से लाता ?

---

* (राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय का छात्र, जिसने नाटक के सैट पर फांसी लगाकर आत्महत्या कर ली।)

पिछले दिनों
वह बहुत तेज बोलने लगा था
भ्रष्टाचार उसके शब्दों में
"राष्ट्रीय धर्म बन गया है."
मैंने तभी जान लिया था
अपेक्षाएं बहुत हैं इसकी, पूरी नहीं होंगीं.
किसी दफ्तर में फिट हो जाना
जहां लोगों के लिए उपलब्धि हो
वहां ऐसे लोगों का जीना कैसे होगा ?
"समझौता करना मैं मौत समझता हूं."
और यही हुआ
अखबार के एक कोने में यह समाचार है.

पड़ाव

फिसल फिसल जाता है
समय हाथों से
साल दर साल
कुछ न कुछ हो जाता है
हादसा.
पैबन्द लगाती
टुकड़े टुकड़े भूखी नंगी खुशियां.
जीने की निरर्थक कोशिश
थकते जाते, करते करते
पेड़ की छांव तले दो पल बैठ
पाते सुहानी चैन की सांस.
आगे चलने की पतली सी ताकत
हांफते सीने की गति धीमी करती
जोड़ों में दर्द, आंखों में धूमिल सपने
अनिच्छा लिए
घुटनों पर हाथ रख उठते
लुढकते से चल पड़ते फिर.
शायद आगे कहीं
खूबसूरत पड़ाव है
जहां राहगीर से पैसे मांगते भिखारी

सड़कों पर सोते ठंड से सिकुड़ते जिस्म
होटलों पर बर्तन मांजते
जूठन पर टूट पड़ते बच्चे
और शाम आटे का घोल बनाने
मांएँ अपने जिस्म नहीं बेचती होंगीं.
होगी, ऐसी जगह होगी कहीं आगे
ऐसा तो नहीं कि
यूं ही चल रहे हम
कुछ तो है आगे
जो हमें ऐसे हालात में भी
चलाए जा रहा.
कल्पनाएँ यूं ही नही बनती
कहीं सत्य तो है
जिससे लिपटे सुनहरे सपने
हम आंखों में संजोए
भारी कदमों से आगे बढ़ रहे हैं.

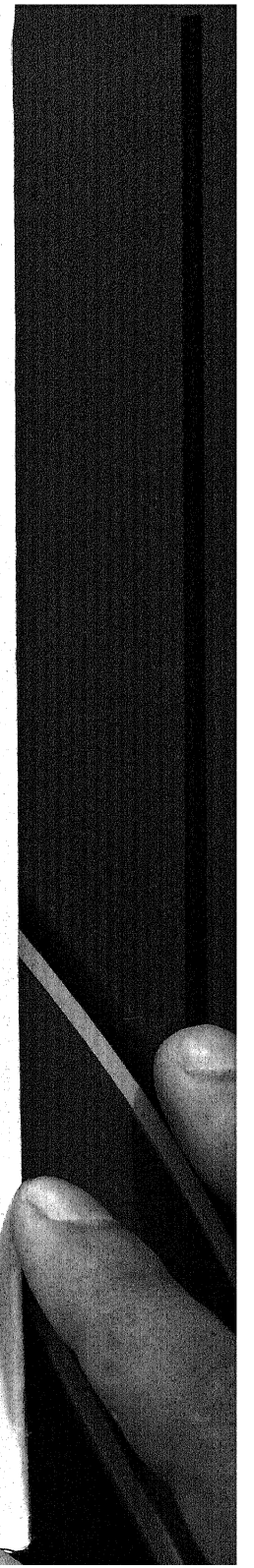

जीते हुए यह जीवन

कितनी ही बार
भीगा, और भीगकर
सूखा हूं मैं.
दिनभर घूरता सूरज
जलाने की सोचता
और हमेशा बच रह जाता मैं
आंधियां आईं कई
तूफानों ने घेरा
सर्दी, गर्मी, पतझड़
रंग देखे कई
घाव पर घाव सहता
खड़ा हूँ अब भी
युद्ध-भूमि में डटा.
कुचक्र एक पर एक हुए
मैं कोई घरौंदा तो नहीं
कि मिला देंगे धूल में मुझे
प्रस्तर शिला हूँ.
हूँ पहाड़, खुरदरा सही
नहीं मुलायम, परी के पंख सा
जो सपने में लगे सुहाना
रुलाए जागने पर
मैं सहता थपेड़े
समय को अंकित करता सीने पर
सूरज, चांद उगे, चाहे उगे तारे
झुकाता नहीं सिर
मैं पहाड़ हूं, पराश्रित बेल नहीं.

छितराई आग

पानी की नहीं खून की बात करो
खून, जो हम सबकी शिराओं में
बहता एक जैसा, एक तरह से.
गोलियों और चाकुओं की चोटें
होती जा रही गहरी
जख्म भरता नहीं, नासूर बन रहा.
बात धर्म, सम्प्रदाय या जात की हो भले
खून का रंग लाल था, और रहेगा
वह अलग बात है कि उबाल वैसा नहीं रहा
जो बदल दे व्यवस्था.
खून अब भी बहता है
हिंसा, आग से भी तेज फैल रही
आग सुलग रही अन्दर कहीं
खंगारने की जरूरत है बस
लपटें उठेंगी, भभक उठेंगी
जरूरत होगी उस वक्त
आग को आग से मिलाने की
सोचो, गौर करो,
दीवारें खड़ीकर बहते खून को
क्या ऐसे ही बहने दोगे
बिखरकर क्या राख बन जाना चाहोगे ?

भविष्य के सपने

घंटी बजी रेसिस की
उमड़ पड़े बच्चे
क्लास से बाहर आने
सभी के हाथों में टिफिन
एक से दिखते स्कूली पोशाक में
हँसते, खिलते, तुतलाते बच्चे
अलग अलग घेरे बना
बतियाते, मिलकर खाते.
छठी कक्षा का छात्र माधो
इन्हीं में से एक
बैठा सीढियों पर चुपचाप
पानी पी, गीले हाथ मुंह पोंछता
उसकी मां ने टिफिन नहीं दिया.
मजदूर बाप का बेटा
ठंडी, सूखी रोटी तो खा ली
कल रात ही
बचा कुछ नहीं जो लाता स्कूल
उसके चेहरे पर कोई दुःख की लकीर नहीं
विश्वास की झलक
वह जानता अपनी मां और बापू की तकलीफें
पढ़ लिखकर वह उन्हें

अच्छा खाना, अच्छे कपड़े देगा
जैसे उसके साथी रहते हैं.
वह जानता
रोने से कुछ हासिल नहीं
मेहनत से काम करेगा
एक न एक दिन
पाएगा वह भी
सुख चैन का जीवन
तब एक बार के खाने को
तरसना नहीं पड़ेगा.
वह खूब डटकर पढ़ता
उसे मालूम है
किस मुश्किल से बापू स्कूल फीस जुटाते
कैसे कैसे सपने देखते
वह उन्हें सच करेगा
यही सोचा है माधो ने.

जाल बिछे रास्तों के बीच

जो है इस वक्त
उसी की बात करो
यही सत्य है
इसी को लेकर या नकारकर
कुछ कर पाओगे.
वादा तुम करो
या करे तुमसे कोई
फर्क नहीं पड़ता इससे
क्योंकि ज्यादातर वादे
नहीं होते पूरे.
झूठ की धरातल पर
मत रखो पांव, फिसल जाओगे
संभालने वाला नहीं होगा कोई
तैयारी करो, बनाओ योजना
जो है अभी पास तुम्हारे
जुटाओ, उन साधनों को
बढाओ, हाथ मिलाने को
फिर रखो कदम सम्भल के
सही रास्ता मिलेगा
ना मिले, बन जायेगा
क्योंकि भटकने से तुम्हें रोकेगा
कोई दूसरा हाथ.

शुरुआत करो, रुको नहीं
लेकिन ध्यान रहे
वादों के व्यामोह में फंसना नहीं
रह जाओगे वरना
मछली की तरह तड़पकर.
ललचाई आंखों के सपने
रख दो यहीं, इसी वक्त
कुचल दो जूतों के तलों से
खुरदरी जमीन पर चलने
उठो, चलो
मिलाओ हाथ, बढाओ पांव
सोचने का अब
समय नहीं है.

कुछ अपना

परछाइयां सब
जीवन ताक पर पड़ा
गुजरनेवालों के चिन्ह
लिए फिरते हम.
सवारेंगे कभी सुनहरे सपने
अभी सोए कहां
काफिला निकल जाए
अकेले पड़ जाएं
कोई हर्ज नहीं
टटोलेंगे स्वर, बिम्ब
अपना रचेंगे.
सांचे में ढला जीवन चारों तरफ
बदबू आती रिसते घावों की
जल्दी नहीं, सोच लें जरा
खुद बनाएं रास्ते
फिर भटकें या पार लगें.
चलना है ही
जीवन को मुक्ति दिलाएं
अपना बनाएं, सजाएं
फिर चलें, कहीं चलें.

अपनी तलाश में

कहते कहते रुक जाना
कल पर धकेलना
रोज कम कर देता
उसका वजन
हल्की होकर बात
उड़ जाती हवा में.
चिन्हों से भरा जीवन
बच्ची को गुड़िया, पत्नी को सिनेमा
धकेलना फिर फिर.
दिन का हाथ से फिसलना
इच्छाएं जलकुम्भी बनती जातीं
धंसता आदमी सहारे के लिए
हाथ पांव मारने का जीवन पाता.
उत्क्रण होना, लक्ष्य बनता
आइने में आदमी
अपने को खोजता
दफ्तर को समर्पित होता.

आग

लावा बहता सवेरे सवेरे
दिन भर
अग्निपिंडों को आग
फिर बिखेर देता
क्षितिज में संध्या.
आसपास तमस
भीतर बाहर झुलसना
धीरे धीरे जलते जाना
लौ टिमटिमाकर बुझती
मिल जाती आग में.
राख शेष
जलती बुझती चिन्गारियों के साथ
आग ही आग चारों तरफ
उसी की तलाश लेकिन.

खाइयों से गुजरते हुए

इधर खड्डा, उधर खाई
विकल्पहीन
सड़कें नापते, सदियों से.
खाइयों के रास्ते दिखा
वे आश्वस्त हो जाते
लौटने पर इशारा
ऊपर की तरफ.
हम चुप
नए रास्ते की चिन्ता में
एक दूसरे को दोषी ठहराते
दंगे, बलवे करते
चपेट में आ
लथपथ आंसू पोंछते.
चिल्लाने पर
वे बासी रोटी फेंकते
बढने का इशारा पा
हम बढ़ जाते
भटकाव घेर लेता
वे रंगों से रहते खेलते

हमारा देश

नारों के पुल पर
आश्वासनों के खम्भों पर
हमारा देश
चरमराता, टूटता नहीं.
भुखमरी, बेरोजगारी, अकाल, सूखा
तिरंगे के नीचे
भारतमाता की याद
साल में दो बार.
इस देश को कहां रखूं ?
मुट्ठी में भर लूं या
बिखेर दूं फर्श पर.
उबकाई आती
कर नहीं पाता
बिल्लियों के नाच
कुत्तों की भागदौड़ में
आदमी खो गया.
झंडों, पोस्टरों से बना
देश का आकाश
चांद जेब में रख, हंसता
अन्धकार में लूटमार
रिश्तों का व्यापार
निस्तब्धता, भीतर कोलाहल
ज्वालामुखी फटता नहीं
सूरज उगता नहीं.

एक प्रश्न

कितने बौने हम सब
सम्बन्ध हमारे
काँच के ग्लास
छोटे छोटे स्वार्थ
तोड़ जाते जिनको.
पृथ्वी नापने की कल्पना
कमीज की छोटी जेबें
बटोरने की आदत नहीं छूटती
शरीर लहूलुहान
अकेले चारदीवारी में
रिश्ते फिर भी बुनते.
सब खोकर पाने की बातें
सब लूट लेने की कोशिशें
भय बढ़ता पल पल
क्षीण होते जाते
दौड़ते रहने की चाह
फिर भी.
आंख पर पट्टी बांधे
हाथ आएकी जेब काटते
शरीर नोंचते, काटते, खाते
कहां जा रहे हैं हम ?

नई सुबह

मेरी सुबह तुम कब आओगी
सोई, ठिठुरी, सिकुड़ी सुबह
मैं कहां रखूं ?
आग पर जलने का डर
पानी में जमने का
जो सूरज से डरे
गर्मी से घबराए
दुबकी पड़ी रहे
उसे मैं अपनी कैसे कह दूं ?
तुम जानती हो
मैं चाहता उस सुबह को
जो शहर को एक ही झटके में
चीरकर फाड़ दे
आतंकित कर दे
बिस्तर छोड़ने को मजबूर कर दे
उठकर भागने का जोश भर दे.
मैं वह सुबह चाहता
जो युद्ध के बिगुल की तरह बजे
शेर की तरह दहाड़े
कायर को ललकार जगाए
साहस भर दे उसमें.

सूरज को हथगोले की तरह
उठा फेंक दे शहर पर
एक विस्फोटक उजाला भर दे
मैं उसको इंतजारता हूँ.
उकड़ू बन आग के पास बैठी सुबह
मुझे नहीं चाहिए
थरथराती बिस्तर में दुबकी सुबह
मैं नहीं चाहता
मैं तलाशता
उस सुबह को जो
आग अपने हाथों में लेकर उठे
बिखेर दे धरती की छाती पर
नोंच ले बोटियां
भेड़ियों और गिद्धों की
जो शहर की सड़कों पर टहल रहे हैं
मंडरा रहे हैं
मुझे उस सुबह की चाह है
मेरी सुबह तुम कब आओगी ?

इस शहर में

लाल धब्बों का भूत
उड़ गए कबूतर
दरवाजे, खिड़कियां बंद
आवाज सुन सिहरे लोग
मंदिर में घुस गए.
धुएँ के अंबार में एक महामानव
सर कटे लोग
जो पैरों से देखते
घरों के आंगन खाते
शहर को घेरे.
तमाशा देखते
बदहवास लोगों का
जो चौंक जाते
बच्चों के खिलखिलाकर हँसने पर
मुंह पर पट्टी बांध
इशारा करते
शहर के बाहर.
आतंकित बच्चों की नई जमात
करते पैदा उनके लिए
जिनका पेट शहर के भीतर है.
संगीत से भय का राग
चित्रों में डरावने रंग
दीवारों पर अन्धेरे के पोस्टर
एकटक देखते
जी जाते
पूरी जिन्दगी ये लोग.
पोस्टर फाड़ जी हल्का करते
शहर में गोलियां चलतीं
लाल धब्बों वाला भूत सब देखता
उस तरफ किसी बंदूक का मुंह नहीं होता.

पांच साल की दुपहरी

सड़कों, गलियारों और छतों पर
जाड़े की दुपहरी
फैलकर लम्बी हो गई
अलसाई पड़ी सो रही.
शहर जैसे कहीं रुक गया है
धूप ओढ़े चुपचाप
खोए खोए लोग
एक एक कर ढहती दीवार बन रहे.
कुत्ते एक ही दिन में
सब बटोर लेने
तलाश रहे
इस कोने से उस कोने तक
बोटियां, मांस और खून.
रिसते रिसते शहर पीला हो रहा है
कुत्तों, भेड़ियों के दांत उग आये हैं
दहलीज, आंगन, चौराहे हुए
बिखरे बिखरे लोग
टुकड़े टुकड़े अंग
और उन पर दौड़ते कुत्ते.
जीने की सार्थकता शायद पड़े रहना
या करवट लेना ही रह गई है.
इस शहर में दुपहरी
पांच साल की होती है
एक दिन के लिए लोग उठ
अपने अंग समेट
ठप्पा लगा आते हैं
फिर पांच साल छुट्टी पाने.

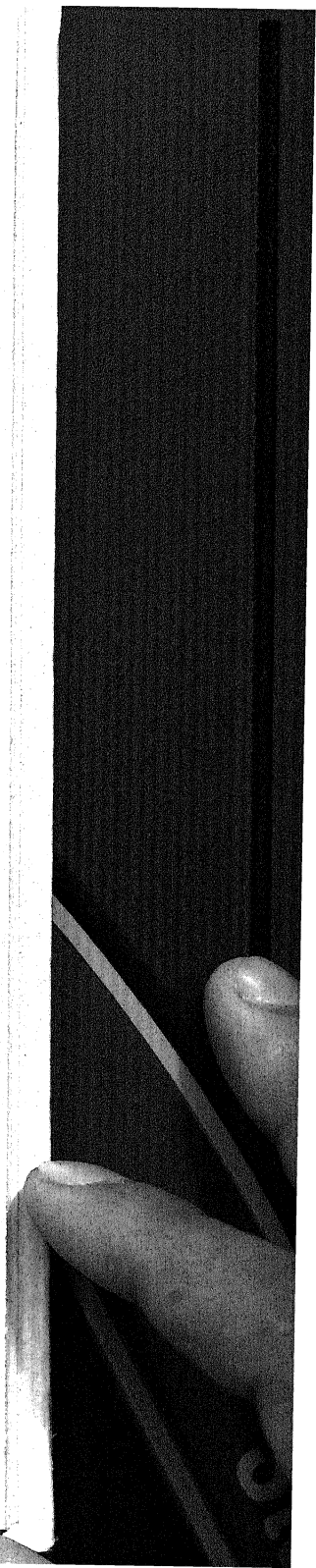

काले साये

हर एक का साया
काला होता है
कभी छोटा, कभी बड़ा
वक्त के बदलते रूप में
हमारे नए नए प्रतिबिम्ब.
तेज धूप जब दिन में होती है
हम काले कम होते हैं
धीरे धीरे फैलता जाता
हमारा काला साया
हमसे जुड़ा.
शाम काला लबादा हम पर फेंक
सूरज बन्द कर लेता आंखें
सायों के संसार में
लबादे मिलते
शहर की गलियों में खो जाते
क्रम दुहराया जाता
लबादों को लूटा जाता, पीटा जाता
बलात्कार किया जाता.
सूर्य, बदलाव की अपेक्षा लिए
पहाड़ के उस छोर से झांकता
उस वक्त लाशों की शिनाख्त होती
लूट, बलात्कार की रिपोर्ट होती
साथ गुजरे लोग
हो जाते अनजाने
कुचला, मसला शरीर
हो जाता अपरिचित
और सूरज फिर
अपना मुंह छुपाने
पहाड़ की दूसरी तरफ भागता.

एक दिन

दिन भर सूर्य
मेरा खून पीकर
बिखेर देता
शाम क्षितिज में.
मैं बढ़ जाता
श्मशान की ओर
जहाँ इन्तजार करते
मेरे बच्चे.
पत्नी पिंडदान करती
जिसे ग्रहण कर
मैं सो जाता सलीब पर
इस तरह मौत होती
उम्र के एक दिन की.

कुछ हो जाने के बाद

जल रे जल
तू कितना प्यासा
अतृप्त रहे जीवन
प्यास पाते तुझसे
बादल, ओस, बर्फ, पानी
निराकार, रूप बदलते
बिखरता, सिमटता, हिलोरे खाता
शांत कभी रहता पड़ा
प्यास बुझाने भागता
अमिट प्यास
लगा देती प्रश्नचिन्ह.
बिखरा संसार समेट
हो जाता लाल गुस्से में
बिलखता छोड़ भाग जाता
चुप करता, कराहते, तड़पते लोगों को
सूखे होठों पर हाथ गीला रखता
फैलाव सिमटता
सिमटा संसार फिर फैलता
होता पल भर में
आंखों के सामने.

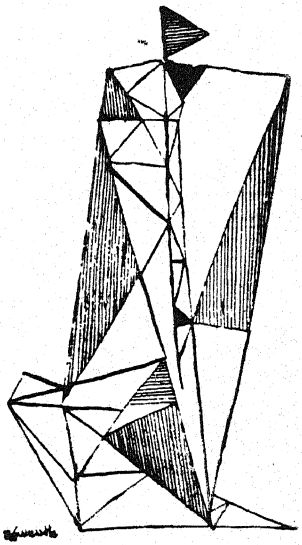

तुम्हारे और मेरे बीच

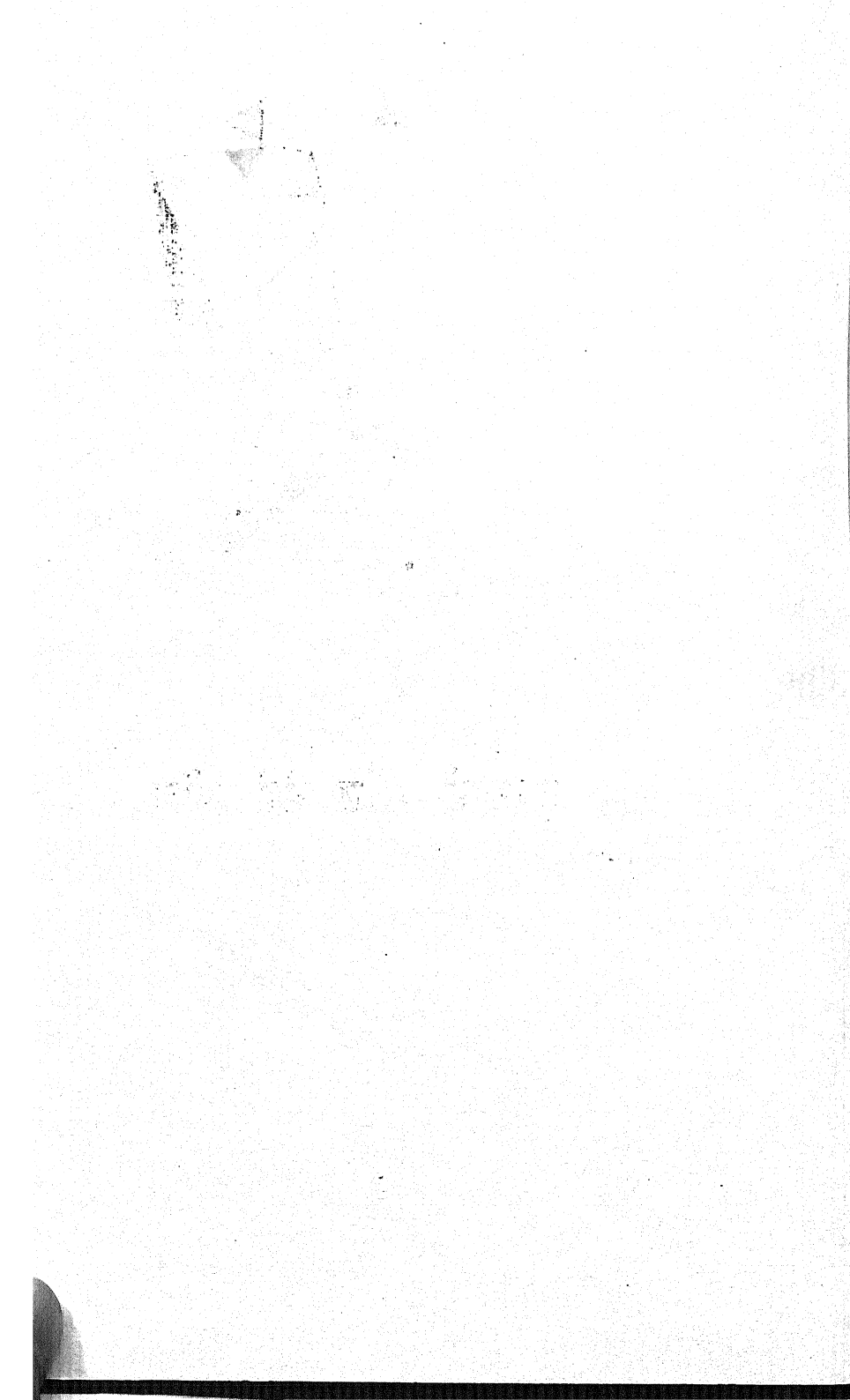

लौटते हुए

सूनी हवेली के बन्द कमरे में
मकड़ी के जालों में फंसा
धूल सना मेरा संसार
आंगन पार
घर तलाशता.
रहस्यमयी हवाएँ
भयानक धूप
चमगादड़ों की गंध.
लम्बा सफर जोखिम भरा
लौटने को कहता
धंसती जमीन दौड़ाती
जमीन की खोज
हांफती सांसें, थकान
तेज गति.
सांपों का पीछा करना
लौटाता वहीं
सुरक्षा में लौट
भागने को आकुल
मेरा संसार कहां जाए ?

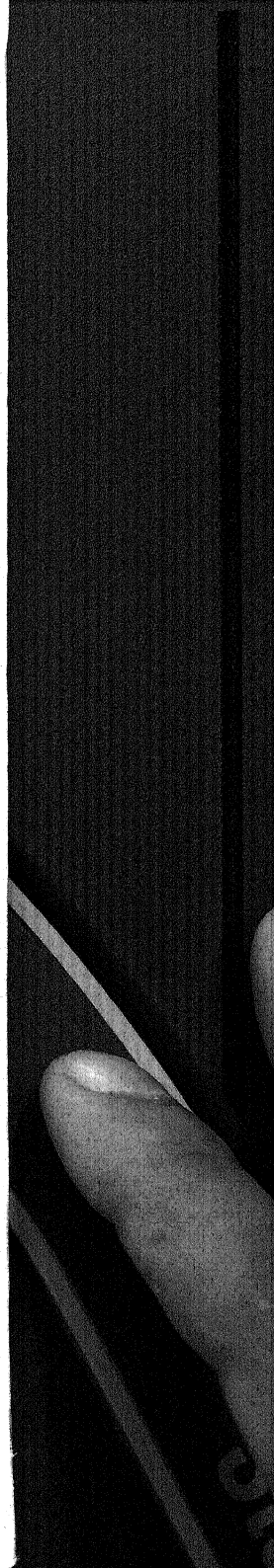

वही क्रम

एक के बाद एक
सबके साथ
वही बात, हर बार.
बनते बनते बिखर जाना
मुस्कराहट में तन्हाई
उलाहने में प्यार
पानी बहते बहते रुकता
सीमा पार की कोशिशें
दूर टिमटिमाते तारे बनना.
कितने तारे मेरे अब भी
सो नहीं पाता टूटने पर
पार जाते धागे को
हाथ थामे.
दृष्टिबन्ध, मुट्ठी बन्द
कहीं कुछ नहीं यूं तो
मुट्ठी खुलती नहीं
वही क्रम, वही क्रम, वही क्रम.

तुम्हारे और मेरे बीच

दोष तुम्हारा नहीं
मेरी आदतों का है
फैल जाता रेगिस्तान
बूंदें पानी की
उगा जातीं बबूल.
कांटों का साथ, हरी नन्ही पत्तियों से
शिकायत फिर भी नहीं
पर बिस्तर दोमुंहा हो जाता कभी.
बालू के ढूह दब जाते
आंख के पानी से
टुकड़े टुकड़े सनक
कंधे पर ढलती.
हाथ में अचानक पीले फूल आ जाते
कांटे, पत्तियां साथ
पीला जीवन
अलसाया सरकता.

स्वप्न संसार

पंख फैलाए उड़ते
कभी एकदम नीचे आ
छू लेते शाखा, बहते जल को
स्वछन्द, स्वतन्त्र जीवन
पंछी सा.
धीरे धीरे घोंसले में
उड़ानों का सिमटना
तानाबाना बुनना
फैलाना मन को
चोंच चोंच संसार उड़ेलना
अपने को भुलाना.
सूरज उगते, डूबते
एक सुबह पंख फड़फड़ाना
धीरे धीरे दूर होते जाना
घोंसले में बुने सपनों को छोड़ अधूरा
तलाश में
किसी नए सपने की.

भटकते पदचाप

गेरुए वस्त्रों का संसार
रंग गहराते
काले पड़ जाते
साये धूमिल हो, खो जाते
अकेला सफर यादों का
अन्धेरा टटोलती आंखें
रात भर.
सड़कों पर बिखरे
हल्के पदचाप
कान ढूंढता
अनगिनत पगडंडियां
जानी, अजानी
आगे मिलतीं
पीड़ा टुकड़े टुकड़े चुभती
मरहम की नदी ढूंढते
युग बीते.
सन्यासी भाव सिमट गेंद होता
लटक जाता, उछल आकाश में
हम
सड़कों पर रहते भटकते.

अनजान शहर का अभिशाप

दिन लम्बे लम्बे, भारी भारी
रातें
बोझिल, काली काली
गर्म मौसम
हवा धुआं धुआं
घुटन भरा जीवन
हाथ पसारे बेबस
पटक दिए गए हों जैसे
तपती शिलाओं पर.
मासूम चेहरे भावहीन
बतियाने को अकाल
दो शब्द का भी
निरीह घूमते फिरना
सड़क के इस कोने से उस कोने तक.
अपने से लगते
इतने अपरिचित चेहरे
शायद सभी के घरों में
बीवी बीमार है
बच्चे भूख के मारे इन्तजार कर रहे
अपने बाप का
बनिए और मकान मालिक के पैसे चुकते नहीं
बॉस की डांट खाए
जैसे सभी ऑफिस से निकले हों.
एक रूप, एक रंग
पीलापन सभी के चेहरे पर
पर फिर भी
अनजान शहर का अभिशाप भोगते
जी रहे लोग.

तुम बोलो

कह लो
अब भी जो बचा है
सुनने को हूं ही मैं
कहीं भटक गए थे तुम
या मैं राह भूल गया था
कुछ हुआ जरूर था
जब हाथों की गिरफ्त कमजोर होते होते
पता नहीं कब
दूरी फैल गई.
रेत में धंसते पांव
कहां कहां नहीं भटके
टीलों के बीच झंझावातों में
मरीचिका के पीछे ललचाए
दिन, मौसम, साल
गुजरते रहे, गुजरते रहे.
कांटे की चुभन से
तुम्हारा ख्याल आया
अकेलापन हावी हुआ
ढूंढते ढूंढते कहां कहां भटका.
अब जो तुम हो सामने
थकी आंखें बन्द होने को हैं
पर आंसू हैं कि रुकते ही नहीं
होंठ खुलते ही नहीं
बस
तुम बोलते जाओ
मैं सुनता रहूंगा तुम्हें
संतूर के मधुर संगीत की तरह.

साथ के बाद

आवाज मेरी
अब भी पहुंचती होगी
तेरे आंगन में
किसी रंग, किसी फूल
या और कोई बहाने
करीब पाती होगी तुम.
कोई गीत जब गूंजता होगा
रातों में
तन्हा चांद जब सरकता होगा
बादल की ओट लेकर उदास
मेरी सूरत कहीं टिमटिमाती होगी
झिलमिल तारों में.
भीड़ में चलते कभी
छू जाता होगा
किसी के हाथ से हाथ
देख अपनी हथेली
याद करती होगी, मेरे हाथ को.
साथ चलते बातों में
कभी मैं तुमसे झगड़ा था
उन बातों में अब भी
मुझे तलाशती होगी.
वे घरौंदे क्या हुए
जो सपनों में बनाए थे तुमने
और कहा था, रहेंगे साथ साथ
क्या अब भी बाकी हैं उनके निशान
या बह गई रेत
साथ हवा के.

एक टुकड़ा सुख

गिरे
अन्धेरे गहरे कुएं में
धड़ाम
हवा में तैरते
पल भर, भविष्य से अनजान
एक टुकड़ा सुख
फिर जख्मी हुए
और कोशिश
धीरे धीरे दीवार
पार करने की.
पल भर फिर तैरने हवा में
इंच भर इन पलों को पाने
कितना गिरे, कितने जख्म खाए
जोखिम का लम्बा काल बिताया.
प्यास फिर भी
उस पल को पाने की
नन्ही उंगलियों का स्पर्श
वह क्षण, अतीत भविष्य को निगलता सा
हरी घास पर धीरे से बहती हवा
सिहरना, लहराकर छू जाना
इन टुकड़ों में पैबन्द लगा
उम्र पर रजाई ओढ़ाने की कोशिश
हां कोशिश
हवा में तैरते पल को स्थाई करने की
दीवार फांदने और जख्म भूलने की.

फासला

झूठ नहीं कहूंगा
कई बार तुम्हें भूलना चाहा
सड़क, पान की दुकान और कॉफी हाउस में
पर
उल्टे पांव मेरे आगे दौड़ती
टेबल के बीच
बातों में शून्य तलाशकर
तुम मुझे थामे रही.
पाने और खोने का सिलसिला
लम्बा होता रहा
मजबूरियां फैलती गईं
और मैं लाचार
तुम्हारी बीमारी सुनकर भी
सिरहाने बैठ नहीं सका.
सच, अनजान शहर का भी
एक अपना सुख होता है
यहां चारों तरफ
परिचित चेहरे पर अपने नहीं.
रिश्तों के धागे टटोलते
मैं उन्हें टूटने के डर से बचाता

जख्मी हुआ जाता
और अनजान बन चुपचाप
मुस्करा देता हूं.
तुम तक पहुंचना
सात समन्दर पार पिंजरे में बंद
तोते को पाना है.
मेरी लाचारी, रीतापन
धीरे धीरे कोफ्त में बदलता
गोद में सिर रखने की आकांक्षा
रुआंसी हो चुपचाप ढलते सूरज सी
सरकने लगती.
तुम चाहे जो कह दो
दोष नहीं दूंगा
पर चारों तरफ पहरे हैं
और मैं सलाखों में बंदी हूँ.

गंतव्यहीन

एक एककर तिनके
किए इकट्ठे, सपना संजोया
उड़ानें भरीं
लौट आए फिर वहीं
प्यार से बंधे.
देह से कई गुना अधिक
उँड़ेला, जिए, तमन्ना किए
बहुत आगे देखा किए
ठुमकते पांवों को/पंखों को
बैसाखी बने बुढ़ापे को.
पंख उगे/पांव बढ़े
निकल गए बहुत दूर
आंखों से.
सांझ बाट निहारे
सुबह आंख पुकारे
तिनके बिखर उड़ गए
उड़ान फिर
स्वप्नहीन.

मां

तुम बहुत सुन्दर तो नहीं हो मां !
बेडोल, गेहुंआ रंग
औसत औरत की तरह
कभी बापू डाँटते, कभी पीटते
मैं नहीं मानता
तुम्हारा कहना अक्सर.
संसार तुम्हारा घर, आंगन
दिन भर काम, चिन्ता
खाने, पहनने, सोने की
मेरी, बापू की
घेरे दर घेरे.
पसन्द, फरमाइश क्या
होम दिया जीवन ही
कहां कहां से झुलसी
फिर भी
बहुत अच्छी लगती हो
अलग जीने की कल्पना
आतंकित करती, रुला जाती.

दस्तक

सागर अथाह
विफलता का तूफान
बार बार उठना
साथ ले जाना.
लहरों के थपेड़े
किनारे की तलाश
मन बार बार
हुआ जाता हताश.
भीड़ है संग
मोहभंग
अकेलापन बदरंग
कहां थे मिले, कहां खो गए
जेब थी फटी, सपने बिखर गए.
आगे अंधेरा, रास्ता ढूंढ़ना
सफेद चेहरों में आदमी खोजना
गलियां मुड़ जाएंगी
चौराहे में खो जाएंगी.
सूखे पत्तों का ढेर

पहले छाता था हरा
आज गिर गया
कल पेड़ था खड़ा
आंखें काली खाई में
खो जाने को हैं
पेट धंसा पिंजरे में
सिमटने को है.
समय दस्तक कर छुप जाता
मुश्किल खोकर ढूंढ़ पाना
पर चारा क्या है ?
कंधे पर रख समय की लाश
तुम चलो, हम चलें
कहीं पहुंचें
घर से तो निकलें.

मेरा शहर

सड़कों पर दौड़ता मेरा शहर
गलियारों में खोकर
लौट आता
दूर चौराहा पुकारता
पास आने पर दुत्कारता.
शहर लिए फिरना शहर में
बोझ से झुके
सर पर सूरज रखे, ढूंढ़ते
चांदनी चुप्पी थमा खिलखिलाती
बदहवासी सफेद बिछ जाती.
लौटना न होता
कहीं निकल जाते
पत्थरों को जोड़ा न होता
आगे बढ़ जाते
धुआं न होता, आग
लगती, बुझ जाती
देर तक कुछ न रहता.
तारीखों की लकीरों से
सींखचों में बंद वक्त
शहर फिर भी दौड़ता
आदमी पिंजरे में
कुछ टटोलता.

एक बार फिर

सरकंडे की दीवारों में
पलते हैं रिश्ते
स्थिर रखने की कोशिशें
चकनाचूर होतीं
हवा के झोंके के साथ.
अटकलें नए आवरण की
इच्छा किनारा करने की
आरम्भ सुखद
दरारें फैलतीं फिर
स्वार्थ पलता
हवा से भय बढ़ता
आएगी, बिखेर देगी
तोड़, असहाय कर देगी
रिश्ते अनाथ भटकेंगे.

प्रतीक्षा

ऐसा तो कुछ नहीं हुआ
दूरियां भी दूर हो जाएं
फिर लौट आएं
वे पल
सब समेट लूंगा
देखना
कितना बदल जाऊंगा
तुममें समा जाऊंगा
ढूंढ़ना खामियां, एक नहीं मिलेगी
इस बार बताऊंगा
मेले में तुम्हें कैसे सम्भाले रखता हूँ.
खो गए थे पिछली बार
मैं ढूंढ़ता रहा
खबर मिलेगी, दौड़ पड़ूंगा
एक एक कर सब लौट गए
मैं कहां जाता ?
बैलगाड़ियां
उजाला दिखा बढ जातीं
अन्धकार
फिर लम्बा अन्धकार
और लालटेन का इन्तजार.

अखबार और आदमी

मुझे फाड़ डालो दोस्त
मैं पुराने अखबार का पन्ना
उपयोग के युग में
मैं कहां ठहरूंगा ?
पुलिन्दे में दब जाऊं
धूल सना पड़ा रहूँ
रद्दी वाले के इन्तजार में
आलमारी में बिछा दोगे
वहां मेरे समाचारों का क्या महत्व ?
मुझ पर रखा सामान
शिकायत करेगा
महंगाई, मिलावट की
मैं छपा पन्ना
क्या कर सकूंगा
बिना मुंह के ?
बाजार भाव
हत्या, आत्महत्या के आदमी
दुर्घटनाओं के स्थल
और नेताओं के दल
आज बदल गए हैं.
लाचार भटकूंगा
मैं आदमी तो नहीं
कि बदल जाऊंगा
जैसे तैसे जी लूंगा
इसीलिए कहता हूं
मुझे फाड़ दो
इधर उधर बिखेरो मत.

सन्दर्भों के आसपास

बैसाखियों पर चलना
अच्छा तो नहीं
पर मजबूर, क्या करें ?
साहस जुटा
कुछ दूरी भले तय कर लें.
धीमी चाल में
बैसाखी का एहसास
घेर लेता
अंतराल खलता, चुप्पी काटती
इच्छाएँ आकार लेतीं
कसैले सन्दर्भों से
अतीत वर्तमान में झांकता
भविष्य के घर.
पिछला धूमिल होता
बढ़ने की लालसा
समझौता कराती.

जागने का खेल

बारिश के बाद
गीली मिट्टी की गंध
पत्तों पर ठहरे पानी का
टप टप गिरना
ठंडी हवा से
बदन सिहरना
बादलों का आवरण
चांद का चुपचाप सरकना.
छत पर खड़े
जुगनुओं की चमक में खोना
भीगे कुत्ते का
दुबके पड़े रहना
देर रात घर लौटते
साइकल सवार का घंटी बजाना.
जुड़ते जाते संदर्भ
चुपचाप रात का साथ
हर साल बढ़ता
कभी एकदम से
रात मुट्ठी में आ जाती
जागने का खेल
हर रात
मैं—रात.

खोज

कौन है
जो फिर फिर
जीने को करता मजबूर.
अभी हादसों से गुजरे
जख्म खाए
दो दिन एकाकी जीकर
कोमल पांखुरियां छूने की ललक
एक बारगी छलछला भरना
दूसरे पल खाली हो जाना
अरहट की तरह
बार बार.
शोर में खोना
करवट बदलना
अतीत भुलाना, उसी में जीना
कहीं समझौता
कहीं विद्रोह
पर अंत कहां है, क्या है ?
बिना सीढियों की ऊंची मीनार पर
मजबूरी खड़े रहने की
दहशत भरा हर पल
जागते रहने की विवशता
बहलाने को
दृष्टिसीमा तक का जगत
निपट अकेले
फिर भी जुड़े
कौन है, कहां है
जो बांधता है
टूटकर जुड़ने को करता विवश.

चक्रवात

अभी ताजे हैं पांवों के निशान
मिटने तक आस रहेगी
दूर तक गुमसुम
तुम्हारे कदम
लगता है, बोझिल गुजरे हैं
गति के चक्रवात
अब धीमे हो गये हैं
और मैं तो चल भी नहीं पाता.
निशान ताजे हैं
शायद लौट सको तुम
बाद में रास्ता ढूंढ़ना मुश्किल होगा
हालांकि जानता हूं
मुड़ना तुम्हें पसन्द नहीं
हर मोड़ पर तुमने लगाए मेले
खो गए उन्हीं में
अकेले पड़कर भटके.
मैं ढूंढ़ा किया
तुम्हारे कदमों के निशान
पर तुम दूर, बहुत दूर होते गए
और फिर
अंतहीन भटकाव.

भटकते चेहरे

रुख बदल देती है ये हवाएं
एक नया सफर शुरू होता है
बहुत बेरहम होती हैं ये
ताजे चिन्हों को
इस तरह मिटा देतीं
शेष, कुछ नहीं बचता
बदहवासी में खोज फिर शुरू होती है.
खेलते खेलते
इस तरह चपेट में लेती है
चक्रवात में अकेला कर जाती है
कभी एक अपरिचित चेहरा
कर देती खड़ा
फिर शुरू तारतम्य की खोज.
सन्नाटा बुनते बुनते
कभी शोर बन जाती ये हवाएं
कभी गुमसुम खोई सी
सांय सांय रहती भटकतीं
अन्तहीन, शब्दहीन.
दहलीज से आंगन तक
तुलसी के पत्तों से कैक्टस तक
और तो और
तुम्हारे मस्तिष्क से मेरे मन तक
फैली ये हवाएं
फैलती ही जा रहीं
सिमटने को बस रह गया
आदमी.

अनुगूंज अवशेष

अनुगूंजों की तलहटी में
मेरी आवाज भी कहीं भटकती होगी
ढलान पर फैले
अनगिन देवदारों में
मेरा नाम भी लिखा होगा कहीं
या परत दर परत
चढ़ती छालों में खो गया होगा.
बनजारे की तरह
भटकते फिरते
कितनी ही घाटियों में
मैं शब्द बनकर जीता रहा
अनुगूंजें बढ़ती गईं
तारकोल की सड़कें लम्बी होती गईं
कोलाहल बढ़ा
घाटियां और सड़कें कभी नहीं मिलीं
मेरी आवाज
पहुंच न सकी सड़क तक.
किनारा दूर कहीं दिखा
मैं तलहटी की ओर भागा
लौटने पर पाया
सड़कें और लम्बी हो गईं
चलने का सिलसिला
फिर शुरू
शब्दों को
घाटियों में छोड़ आया
जहाँ अवशेष बन भटकेंगे
एक अनाम की खोज की.

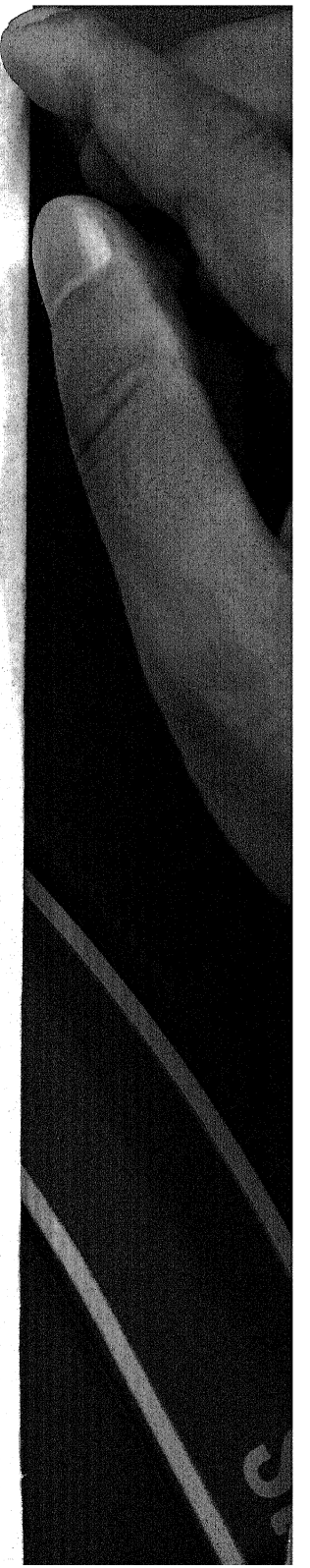

सोना पानी चढ़ा शहर

धूप के साये
अब घर को चले
बोझिल कदमों से.
सोना पानी चढ़ा शहर
घरों की खिड़कियों में बंद हुआ
रोशनदानों से निकली
दिन भर की चहलकदमी, सांसें और आपस की बातें
रजनीगंधा पर परत बनी
खुशबू ले गलियों में, सड़कों पर
बदहवास भटकने लगी.
चांद की चांदी
पायजेबों में समां बिखरने लगी
ग्रहण डसे चांद ने
पीली आंखों
कंगूरे से झांका
'कहीं चांदनी तो नहीं ?'
चांदनी बजती रही, बिखरती रही
बंद रोशनदानों में
ढूंढ़ता रहा चांद उसे
मैदानों, बागानों और छतों पर.

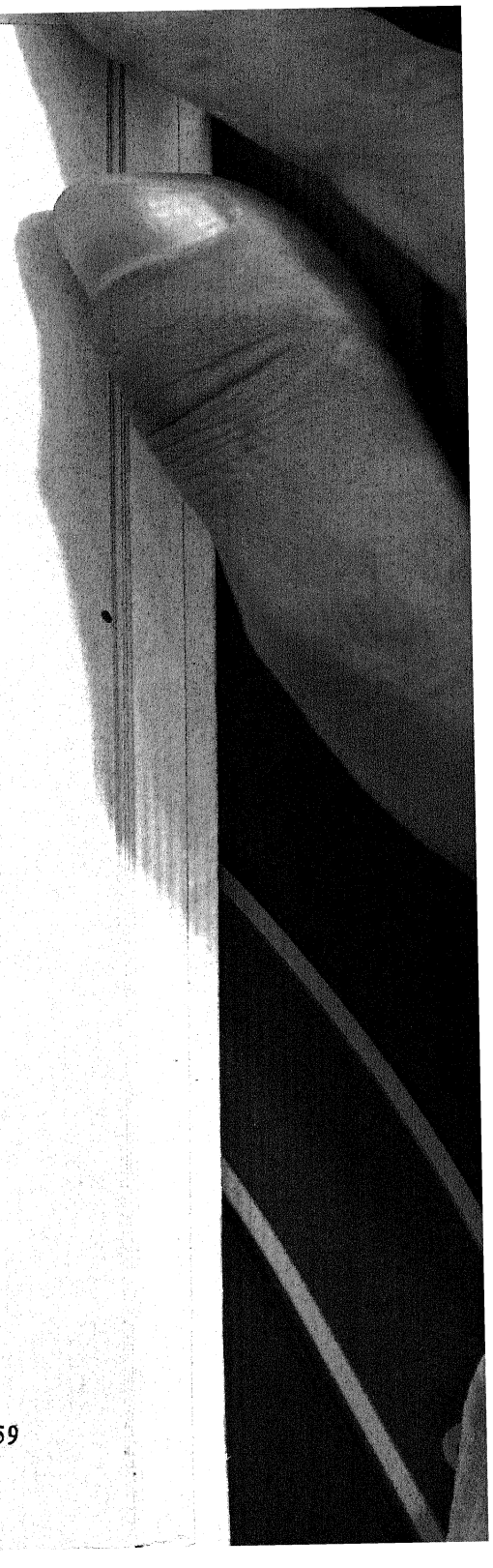

छतों पर रातें
बिना चांदनी के होती हैं इस शहर में.
सांसें, चहलकदमी और आपस की बातें
देर रात तक
रामू काका के हुक्के में सुलगती रहती हैं
काका खांसते हैं
बैलगाड़ी में जुती रात आगे बढ़ती है
खांसते खांसते रामू काका
रात को गांव की सीमा तक रोज छोड़ते हैं.
बैलगाड़ी में चांद को बांध
हवाएं धकेल देती है
गांव के बाहर गहरी खाई में
सोना पानी चढ़ा शहर
खिड़कियां खोल बाहर आता
रजनीगंधा सिमट जाती
परतें बिखर जातीं.

प्रतिबिम्बों का जंगल

हर बार यही
रेल की पटरी, धुआं
बबूल के पौधे, घास और धूल
मील के पत्थरों का गायब होना
मेरा खिड़की से तकना.
दलदल में हलचल
ठहरे पानी में एक चेहरा
धूमिल होता, दूसरा बनता
आइने में एक साथ
लम्बी कतार
चाह एक तस्वीर की
पर उसे ढूंढ़ते
फौज खड़ी हो गई
मैं बनता गया बंदी
आहत हो कराहता रहा.
प्रतिबिम्ब
छितराकर टुकड़े टुकड़े होता
मैं देखता रहा फिर भी
उन टुकड़ों को
बिजली के खम्भों और रेल की पटरियों को.

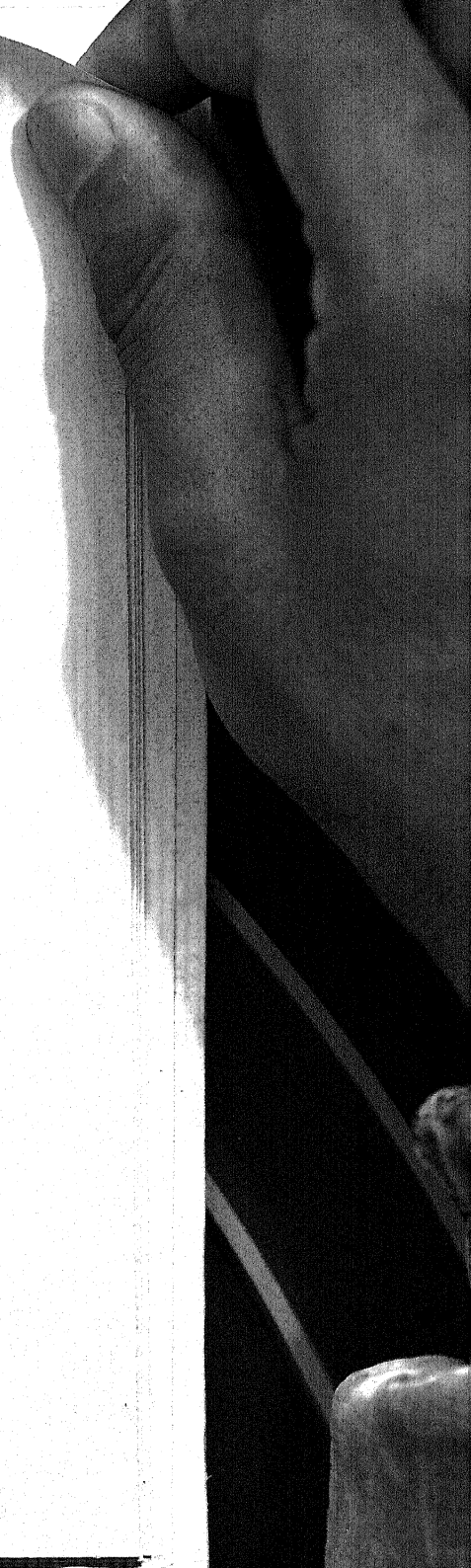

थके हारे

हम तो अब भी जुड़े हैं
इतने भूचालों के बाद भी
कई बार तुम मुड़े और कई बार मैं
पर हर गली
इस चौराहे पर ही पहुंचती है.
जुड़े रहने का नया बहाना
जरूरतों को भरने को रिश्ते
मार्चपास्ट करती
भावनाएं, कुण्ठाएं, कराहें
चबूतरे पर दर्शक बने हम
चौराहे की प्रतिमा की तरह.
कुछ भी नहीं फिर भी कुछ है
गए साल के कैलेण्डर सा
फालतू साथ
फिर भी हाथ में हाथ
मैं, तुम और चौराहा.

चुपचाप

दीवारों पर काई उग आई
खपरेलें चुपचाप देखती रहीं
सब कुछ सहज हुआ
सोचने का कोई औचित्य नहीं
पर बीता कल लगता सुहाना.
घुप्प अन्धेरी रात में
खंडहरों का शहर
उजड़ी इमारतों पर सोया
लम्बा साया, शायद मेरा.
कई बार महसूसा
आवाज देने मुंह खोला
तब तक भीड़ तुम्हें समेट चुकी होती
उठने, चलने और ढूंढ़ने का सिलसिला
खाली हाथ, विदा के साथ
ट्रेन का छूटना
आंख का जलना
पैरों का गठियाना
फिर इन्तजार चुपचाप.

और तुम

बहती हवाओं के हवाले होकर
उजाड़ बियाबान में पहुंचे
लम्बी अन्धेरी गुफाओं में
सुनकर अपनी आवाज
अपनी ही खोज में
सुनसान खाइयों में भटके.
कई बार जंगल पार करते
मैंने तुमको सुना
अट्टालिकाओं की ऊँचाइयों से
शब्द टकराकर
टुकड़े टुकड़े हो गए
और तुम चुपचाप खड़े रहे.
कई बार लगा
ऊँचाइयां मोम बन रही हैं
और मेरी आवाज सूर्य
पर स्थितियां पूर्ववत् ही रहीं
सूर्य उगा ही नहीं.
दूर झुग्गी झोंपड़ियां दिखने पर
मैं उधर लपका था
शायद तुम हो
लेकिन जंगली जानवर आजकल
मकानों में रहते हैं
उल्टे पांव मैं फिर लौट आया
जंगल ही जंगल
शायद बस्तियां चपेट में आ गईं
जंगल की बाढ़ के
या तुम जंगल बन गए.

सीमा पार

जी करता है
जोर से पुकारूं
सम्बोधन की प्यास
शायद मिट जाए
एकरसता कई बार अखरती
लेकिन कहीं निरन्तरता भी
होती जरूरी.
बार बार खिड़की से झांकना
सोते में चौंककर उठना
अनुभूति के लिए भले अच्छे हों
पर आकुलता पैठ जाए
तो हर शाम
गुजरती सड़कों पर.
लिपे पुते शब्दों में औपचारिकता
भीड़ में अनौपचारिकता की खोज
सीमा तोड़ फैला बहाव
लेता चपेट में
निरीह उस ज्वर से समझौता
उफान में गिरने उठने का सिलसिला
फूटफूटकर रोना, उठाके मारना.
इस बीच एक पैनी दृष्टि
अन्दर तक चीरती
भावनाओं का भटकाव
संशय की उधेड़बुन
औपचारिकता में फिर पटका जाना
और खिड़की से बार बार झांकना.

सन्नाटे का सफर

मैली-कुचैली खामोशी की चादर
फैली शहर पर
समय को सिरहाने रख
सोया इन्सान
चुपचाप सड़क
बद होती चाय की दुकान
जब तब कोई गाड़ी आकर
चीर देती मौन.
शहर के परकोटे पर
गिद्धों का जमाव
ताजा मांस खोजते
और धूं धूं जलती चिता.
छतों पर टंगे दिन भर के चेहरे
नंगे चेहरे बिस्तरों पर लेटे
भीतर लिए
बिखरे-सिमटे, अस्त-व्यस्त
एक साथ कई युद्ध.
न सोने की मजबूरी लिए
उदास चांद
स्तब्ध पत्तों में से जड़ें टटोलता
और एक बादल का टुकड़ा
आगे सरक जाता.
धुंध, कोहरा या कालिख
शहर को समेट
जैसे होली पर रंगों के छींटे.
मंदिर का दीया टिमटिमाकर बुझ गया
धुएँ की लकीर
हवा में छितरा सब पर बिखर गई
जैसे रोज हुए गुनाहों की गणना
होती इन लकीरों से.

अंत नहीं, आरम्भ दो

अरसे बाद
आज फूटी कोपल
कितना दुःखदायी था
वह पतझड़
ऐसे ही गुजर जाए
शेष जिन्दगी यही तमन्ना.
था वक्त
जब शक्ति थी सहने की
पर अब लम्बी थकान
दो अंगुल प्यार चाहती
प्यार की सीमा जब आती
टूटने लगता कहीं से
तभी तो कहता
मुझे मत दो भरपूर बसन्त
रहने दो ये कोपलें
इनमें है आशा, उत्साह, उमंग
पत्तो, फूल जब खिल जाते
शेष रहता झड़ना ही
मुझे आरम्भ दो, अन्त नहीं
राह दो, मंजिल नहीं.

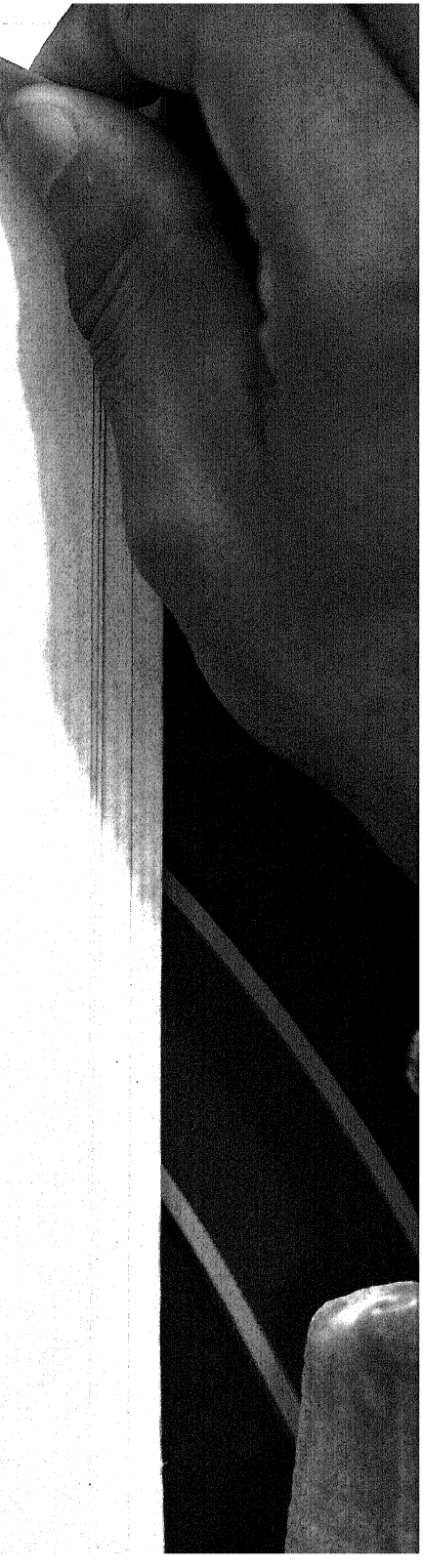

ओस की बून्द

तुमने सच क्यों बोला
मैं यूंही वहम में जी लेता
बहुत कट गई थी
बाकी बहला कर काट देता.
तुम नहीं जानती
सच का यह कैंसर
कैसे रोज मार मार कर जिलाता
मरने की तमन्ना लिए
जिंदा रहने की मजबूरी.
अर्से से हम
शिकायतें पहनकर मिलते
नंगे होकर
सन्नाटे में बिखर जाते
मैं तब से अन्दर ही अन्दर
धुआं हो रहा था
फिर भी सहज रहा
तुम्हारा होकर जीता रहा
मुट्ठी का बर्फ कब का गल चुका था
जानते हुए मैं अनजान रहा
पर तुमने खाली हाथ किया.

चौराहे पर

गली के मोड़ पर
जो हो लिए थे साथ
और खो गए थे
चौराहे पर
अनगिनत पांवों में
वे दो पांव आज फिर
कहते हैं मुझे चलने को.
मगर डगमगाते
मेरे कदम
शायद लम्बे ठहराव से
मेरे पांव भूल गये चलना.
डर है खोने का
सहारा दे कहां तक
तय करेंगे सफर
फिर पटक दिए जायेंगे
किसी चौराहे पर.
आज कितने दिनों बाद
पलकें हिली हैं
ठहरो कुछ देर यहीं
जरा सो लेने दो
इन पांवों पर सर रखकर.
शायद फिर चल पाऊं
तुम्हारे साथ
अगर रुक सको तो
मेरे लिए
इन ठहरे पांवों के लिए.

जोड़ का दर्द

बचपन में सूत
जब टूट जाता था
जोड़ लगा देता था मैं
टूटे को जोड़ना तो अब भी आता मुझे
पर हर टूटन पर जो दर्द होता
नहीं आया उसे मिटाना.
जोड़
हां, जिन्दगी में यही तो किया
हर जगह जुड़ता
और टूटकर जोड़ लगाता रहा
आपको मालूम होगा
जोड़ लगता जहां
वहां सूत हो जाता मोटा
मेरी जिन्दगी में भी हैं
ऐसी कई गांठें
साफ सुथरा न सही
सूत तो है ही.
हर गांठ की अपनी व्यथा, इतिहास है
हर जोड़ का अपना दर्द है
मन को दिलासा देता
गांठोंवाले सूत से ही सही
जुड़ा तो हूं किसी से.

टुकड़े टुकड़े जिन्दगी

यह कैसा मोह
वक्त के टुकड़े टुकड़े लम्हों का
जब तब लम्बी उदास जिन्दगी में
जीने का एहसास दिलाते
फिर लम्बा अन्तराल
घिसटती जिन्दगी
और उन टुकड़ों का सहारा.
लगता मोह भ्रम है
सहारे का एहसास झूठ है
असल में जिन्दगी
अकेले तय किया गया सफर है.
कई बार आधी रात
दूर बजते मंजीरों और ढोलक की आवाजों से
उड़ जाती नींद
उस वक्त बहुत उदास लगता चांद
चुपचाप रास्ता तय करता
मेरी तरह.
ढलती रात में सभी चेहरे
बिस्तर पर बिखरे.
कई बार सोचा
दबे पांव भाग जाऊं कहीं
पर उठ नहीं पाता
आंखों पर हाथ रख
सोने की कोशिश करता.
बिखरे चेहरे
सुबह होने पर
चिपके होते मुंह पर.

बिना पैसे का ताजमहल

धूप फिर लगी.
बबूल की छांव
जीवन भर पाने की चाह
पर यह संभव न था
तपती दुपहरी में झुलसना
सूरज की नियति गर्मी देना
मुझे निरन्तर चलना.
चिलचिलाती धूप, गर्म रेत और लू
कहीं छांव नहीं
एकाध बादल का टुकड़ा
कोशिश करता
सूरज ढंकने की
जैसे अंगुल भर प्यार.
कल्पना में घूमती शाम
ढलता सूरज और चांदनी रात
क्या चलता रह सकूंगा तब तक
या कि
तपती रेत पर गिर, धंस जाऊंगा
और एक टीला बन जाएगा
जैसे बिना पैसे का ताजमहल.